Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# न्याय का उद्देश्य क्या है?

—विवेकभूषण दर्शनाचार्य

**भारतीय मनीषियों की परम्परा में महान् न्यायविद् दार्शनिक महर्षि गौतम जी न्याय का उद्देश्य केवल सांसारिक झगड़ों को सुलझाने तक ही सीमित नहीं मानते थे। इसके साथ-साथ वे न्याय का उद्देश्य मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) भी मानते थे। परन्तु क्या आज का न्याय इन दोनों उद्देश्यों में से किसी में भी सफल हो पा रहा है?**

हमारे इस भारत देश में प्राचीन काल से ही बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, तपस्वी, विद्वान् आदि होते रहे हैं, जिन्होंने मानव-मात्र के कल्याण के लिए विद्या, धर्म और न्याय का सन्देश देकर मनुष्य जाति व अन्य प्राणियों पर भी महान् उपकार किया है। उसी शृंखला में न्याय के क्षेत्र में एक महान् ऋषि हुए हैं, जिनका नाम था—'महर्षि गौतम।' इन्होंने वेदादि शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके वेदों के आधार पर 'न्याय विद्या' को मानव मात्र के लिए प्रस्तुत किया। इस विद्या को इन्होंने जिस शास्त्र में बाँधा, उसका नाम है—'न्यायदर्शन।' इन्होंने इस न्यायदर्शन में सूत्रों की रचना की। इन सूत्रों पर एक अन्य मनीषी ने संस्कृत भाषा में बड़ा उत्तम भाष्य लिखा। इस भाष्यकार का नाम है—'महर्षि वात्स्यायन।' इनका भाष्य न्यायदर्शन पर प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है तथा 'वात्स्यायन भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। 'न्याय' की परिभाषा करते हुए महर्षि वात्स्यायन लिखते हैं—"प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।" (न्यायभाष्य, सूत्र १।१।१) अर्थात् प्रमाणों से किसी पदार्थ का परीक्षण करके सत्य की खोज करना न्याय है। परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि इस न्याय का उद्देश्य क्या है? विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर हमें मिलता है कि—न्याय का उद्देश्य सुख की प्राप्ति करना है। **जो व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ कर्म करता है, उसे पुरस्कार, और जो दुष्ट कर्म करता है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिये, यही न्याय है।** इससे समाज में सुख-शान्ति और व्यवस्था बनी रहती है। समाज के लोग सेवा, परोपकार, दान आदि श्रेष्ठ कर्मों की ओर बढ़ते हैं। दण्ड के भय से चोरी, डकैती, हत्याओं आदि दुष्ट कर्मों से निवृत्त होते हैं। परिणाम स्वरूप समाज में अपराध कम होते हैं और लोग सुख से रहते हैं। परन्तु समाज में कितना ही सुख हो, तब भी मानव पूर्णतया दुःखों से छूट गया हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। महान् न्यायविद् महर्षि गौतम जी का कहना है कि जीवन में अनेक प्रकार के छोटे-बड़े दुःखों की प्राप्ति होते रहने के कारण संसार में जन्म लेना ही दुःखस्वरूप है।[१] अर्थात् संसार में शरीरधारी कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी नहीं है, उसके जीवन में कोई न कोई दुःख आता ही रहता है। तो क्या यह जन्म-मरण और विविध दुःखों का क्रम अनन्त काल तक चलता ही रहेगा या इससे छूटने का कोई उपाय भी है? इस प्रश्न का उत्तर है कि—यदि मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छूटना चाहता है तो उसे संसार के पदार्थों का ठीक-ठीक ज्ञान करना होगा। यही तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का उपाय है। और इस तत्त्वज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कराना ही न्याय का उद्देश्य है। न्याय के इस उद्देश्य को (मोक्ष-प्राप्ति को) महर्षि गौतम जी ने अपने न्यायदर्शन में इन शब्दों में व्यक्त किया है—

*प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः॥ न्यायसूत्र-१।१।१*

अर्थात् प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान (यथार्थज्ञान) से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु संसार में ठीक प्रकार से अपना कर्तव्य निभाये बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। इसीलिये इस सूत्र में जो सोलह पदार्थ बताये गये हैं, उनको ठीक-ठीक

१. विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः॥ न्यायसूत्र ४।१।५५



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेने और उसके अनुसार आचरण करने से हमारे दोनों प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं कि—हम संसार में भी सुखपूर्वक जी सकें और मोक्ष को भी प्राप्त कर सकें। आइये, इन सोलह पदार्थों को संक्षेप से समझने का प्रयत्न करें।

१. **प्रमाण**—जिस 'साधन' से किसी पदार्थ का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त किया जाये, उसे 'प्रमाण' कहते हैं। जैसे—आँख से देखकर जाना, कि सामने एक पुस्तक रखी है। यहाँ 'आँख' ज्ञान-प्राप्ति का साधन होने से 'प्रमाण' है।

२. **प्रमेय**—प्रमाण से जिस 'पदार्थ' का ज्ञान प्राप्त होता है, उस पदार्थ को 'प्रमेय' कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में 'पुस्तक' प्रमेय है।

३. **संशय**—किसी पदार्थ के सम्बन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान न होना 'संशय' कहलाता है। जैसे—ईश्वर है या नहीं। बाज़ार में वस्तु मिलेगी या नहीं। संशय के कारण व्यक्ति सत्य की खोज के लिए प्रयत्न करता है।

४. **प्रयोजन**—लक्ष्य या उद्देश्य को 'प्रयोजन' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य या प्रयोजन है—"मैं सदा सुखी रहूँ, दुःखी कभी न होऊँ।"

५. **दृष्टान्त**—उदाहरण को 'दृष्टान्त' कहते हैं। किसी बात को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण दिया जाता है। जैसे—अमुक गायक की आवाज़ कोयल की तरह मीठी है। यहाँ 'कोयल' दृष्टान्त है।

६. **सिद्धान्त**—'अमुक वस्तु ऐसी है' इस प्रकार से किसी वस्तु के बारे में कहना 'सिद्धान्त' कहलाता है। जैसे—ईश्वर के बारे में कहना कि 'ईश्वर न्यायकारी है।' यह एक सिद्धान्त हुआ।

७. **अवयव**—परोक्ष पदार्थों की सिद्धि करने के लिए जो वाक्य-समूह प्रस्तुत किया जाता है, उसके पाँच भाग होते हैं। इन्हीं पाँच भागों को 'अवयव' कहा जाता है। वे पाँच अवयव ये हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन।

८. **तर्क**—किसी पदार्थ का सामान्य ज्ञान होने पर, किसी कारण को देख कर, उस पदार्थ के सत्य स्वरूप के सम्बन्ध में जो ऊहा की जाती है, उसे 'तर्क' कहते हैं। जैसे—आत्मा के सम्बन्ध में ऐसी ऊहा करना कि—आत्मा शरीर के साथ ही नष्ट नहीं हो सकता, वह तो नित्य होना चाहिये। क्योंकि आत्मा (व्यक्ति) के ऐसे बहुत से कर्म देखे जाते हैं, जिनका फल उसे इस जन्म में नहीं मिल पाता। यदि उन कर्मों का फल उसे अगले जन्म में न मिले, तो उसके कर्म व्यर्थ हो जाएँगे और यह अन्याय होगा।

९. **निर्णय**—किसी विषय में दो पक्ष बनाकर, प्रमाण और तर्क से विचार करके अन्त में सत्य का निश्चय करना, 'निर्णय' कहलाता है। जैसे—'ईश्वर है या नहीं।' इन दोनों पक्षों पर प्रमाण और तर्क से विचार करके अन्त में निश्चय होना कि 'ईश्वर है', यह निर्णय कहलायेगा।

१०. **वाद**—प्रमाण और तर्क आदि की सहायता से सत्य की खोज के लिए जो ईमानदारी से शुद्ध बातचीत की जाती है, उसे 'वाद' कहते हैं।

११. **जल्प**—उक्त वाद में जब छल, कपट आदि की मिलावट करके दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति को जैसे-तैसे हराने का लक्ष्य बनाकर जो अशुद्ध बातचीत की जाती है, उसे 'जल्प' कहते हैं।

१२. **वितण्डा**—यह भी जल्प के समान ही अशुद्ध बातचीत है। जल्प में जल्पी व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना कर देता है—'कि मैं ऐसा मानता हूँ।' परन्तु वितण्डा में वितण्डावादी व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना भी नहीं करता और केवल दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति का खण्डन ही करता जाता और उसे हराने का प्रयत्न करता है।

**विशेष**—जल्प और वितण्डा का प्रयोग दुष्ट प्रकृति (स्वभाव) वाले व्यक्ति किया करते हैं। उनकी दुष्टता को रोकने के लिए हमें यह ज्ञान तो होना ही चाहिए कि दूसरा व्यक्ति किस प्रकार से छल, कपट आदि का प्रयोग करके हमें हानि पहुँचाना चाहता है। इसलिए हानि से बचने के लिए जल्प, वितण्डा आदि का सत्य स्वरूप जानना आवश्यक है। यही बात आगे आने वाले हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये। इसीलिए सूत्रकार महर्षि गौतम जी ने इन सब का स्वरूप ठीक-ठीक जानने का निर्देश किया है।

१३. **हेत्वाभास**—जो वाक्य वास्तव में सत्य कारण तो



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो, परन्तु 'सत्य कारण बताया गया है', ऐसा आभास होता हो, उसे 'हेत्वाभास' कहते हैं। जैसे— 'यह घोड़ा है, क्योंकि इसके सींग हैं।' यह कारण ठीक न होने से हेत्वाभास है।

१४. छल—शब्दों के अर्थ अनेक होते हैं। इस परिस्थिति में वक्ता ने जिस अर्थ में शब्दों का प्रयोग किया था, उसे बदलकर (भिन्न अर्थ की कल्पना करके) वक्ता का खण्डन करना 'छल' कहलाता है। जैसे किसी ने कहा—'मैंने सारी मिठाई खाली।' उसका तात्पर्य था कि—'रसोई में जितनी मिठाई रखी थी, वह सारी खा ली।' परन्तु छलवादी उसका खण्डन इस प्रकार से करता है—'पूरे देश में इतनी मिठाई है कि कोई भी एक व्यक्ति नहीं खा सकता, तुम कैसे कहते हो कि मैंने सारी मिठाई खा ली।'

१५. जाति—जब एक व्यक्ति अपना सत्य पक्ष प्रस्तुत कर चुका हो और दूसरा व्यक्ति समझ चुका हो कि मेरे पास इसका सही उत्तर अब कुछ नहीं है, तब वह चालाकी से किसी समानता या भिन्नता का सहारा लेकर सत्य पक्ष वाले को धोखा देने का जो प्रयास करता है, उसे 'जाति' कहते हैं। जैसे—सत्य पक्ष वाले का कथन—ध्वनि नष्ट हो जाती है। क्योंकि वह उत्पन्न होती है। जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह-वह नष्ट होने वाली देखी जाती है, जैसे—कार। कार उत्पन्न होती है तथा नष्ट हो जाती है, ऐसे ही ध्वनि भी है। इसलिए उत्पन्न होने के कारण ध्वनि नष्ट हो जाती है। अब दूसरे पक्ष वाले का (जातिवादी का) कथन—आपने कार का उदाहरण दिया। कार तो दीखती है, परन्तु ध्वनि तो दिखती नहीं। इसलिए दिखने वाली कार नष्ट हो सकती है, न दिखने वाली ध्वनि क्यों नष्ट हो, क्योंकि वह तो कार से भिन्न विशेषता वाली है। यहाँ जातिवादी ने चालाकी से कार तथा ध्वनि की एक भिन्नता का सहारा लेकर अनुचित रूप से खण्डन किया है। इसने सत्यवादी के हेतु—उत्पन्न होने से का कोई उत्तर नहीं दिया, जो कि इसे देना चाहिये था।

१६. निग्रहस्थान—इसका अर्थ है पराजय की अवस्था। और यह तब होती है जब व्यक्ति कुछ उल्टा उत्तर देवे अथवा बिल्कुल चुप रहे। जैसे—किसी सत्य पक्ष वाले ने ऊपर के उदाहरण के अनुसार ध्वनि को नष्ट होने वाली सिद्ध कर दिया। तब दूसरे पक्ष वाला व्यक्ति बिल्कुल चुप रहे, कुछ भी उत्तर न दें, तो 'निग्रहस्थान' कहलायेगा। अथवा इस प्रकार से गलत उत्तर दे कि—'कौन कहता है कि ध्वनि सदा रहती है, मैं भी यही मानता हूँ कि ध्वनि नष्ट हो जाती है, जैसा आप मानते हैं।' यहाँ अपने पक्ष को ही छोड़ देने के कारण यह उत्तर गलत है, इसलिये 'निग्रहस्थान' कहलाता है।

इन सोलह पदार्थों के सत्य स्वरूप को जानकर हम मिथ्याज्ञान और बुरे कर्मों (पापों=अपराधों) से बच सकते हैं। समाज में प्रमाणों के आधार पर वास्तविक अपराधियों को खोज कर उन्हें दण्ड दे कर न्याय की स्थापना कर सकते हैं। **दण्ड कठोर ही होना चाहिये, जिसको देख या जानकर अन्य लोग भी अपराध न करें, जैसा कि अरब देशों में होता है। कठोर दण्ड के बिना अपराधों को रोकना असंभव है।** परन्तु यह कठोर दण्ड प्रमाणों के द्वारा वास्तविक अपराधी को खोज कर ही दिया जाना चाहिये, अन्यथा न्याय के स्थान पर अन्याय होगा। परिणामस्वरूप जनता में विद्रोह होगा और शासन-व्यवस्था ही भंग हो जायेगी। अतः दण्ड का प्रयोग बड़ी सावधानी से न्यायपूर्वक ही होना चाहिये। इन्हीं सोलह पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से हम समाज में न्याय, सुख, समृद्धि की स्थापना करते हुए मोक्ष की प्राप्ति भी कर सकेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि—भारतीय मनीषियों की परम्परा में महान् न्यायविद् दार्शनिक महर्षि गौतम जी न्याय का उद्देश्य केवल सांसारिक झगड़ों को सुलझाने तक ही सीमित नहीं मानते थे। इसके साथ-साथ वे न्याय का उद्देश्य मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) भी मानते थे। परन्तु क्या आज का न्याय इन दोनों उद्देश्यों में से किसी में भी सफल हो पा रहा है?

**आर्य वन रोजड,**
**पो० सागपुरा, जि० साबरकांठा, गुजरात**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar